ISSN: 2456–5474 RNI No.UPBIL/2016/68367 Vol-2* Issue-4* May-2017
Innovation The Research Concept

# माधवराव सदाशिव गोलवलकर का सामाजिक दर्शन

**भगवान सिंह राठौड़**
शोधार्थी,
मनोविज्ञान विभाग,
डूंगर महाविद्यालय,
बीकानेर

**सारांश**

21 जून 1940 को संघ संस्थापक पूजनीय डॉ. हेडगवार जी का शरीर तो शान्त हुआ परन्तु उन्होंने भारतीय सनातन मूल्यों कि रक्षा हेतु अपने प्रतिरूप परम पूजनीय श्री माधव राव सदाशिव राव गोलवलकर जी को यह भार सौंपा तथा श्री माधवराव सदाशिव राव गोलवलकर जी ने इस परम्परा को आगे बढ़ाते हुए अपनी दृष्टि से हिन्दू भौगोलिक दृष्टि को ध्यान में रखते हुए एक उच्च कोटि का सामाजिक दर्शन प्रस्तुत किया जिसको समकालीन समय में भौगोलिक एवं दार्शनिक दृष्टि से रेखांकित करना प्रासंगिक है।

**मुख्य शब्द :** भारतीय सनातन मूल्य, सामाजिक दर्शन, साम्प्रदायिकता

**प्रस्तावना**

श्री गुरुजी ने अपने सामाजिक दर्शन में एक आदर्श समाज रचना को प्रस्तुत करने के साथ ही इसके लिए आवश्यक प्रमुख घटकों का वर्णन भी प्रस्तुत किया है। समाज के संगठन के साथ ही गुरुजी समान विघटन के लिए उत्तरदायी घटकों का भारतीय समाज के संदर्भ में उल्लेख करते हैं। श्री गुरुजी अपने सामाजिक दर्शन में मुस्लिम समाज तथा साम्प्रदायिकता जैसे विषयों पर भी चर्चा करते हैं। यहाँ यह उल्लेख भी आवश्यक है कि श्री गुरुजी का समाज दर्शन प्राचीन भारतीय समाज व्यवस्था से अत्यन्त प्रभावित रहा है।

श्री गुरुजी कहते हैं कि हमारी संस्कृति ने समाज की उच्चतम अवस्था की केवल कल्पना ही नहीं की, अपितु उसका बुद्धिगम्य चित्र भी सामने रखा है–

**न राज्य न च राजाऽऽसीत् न दण्डयों न च दण्डिकः।**
**धर्मेनैव प्रजाः सर्वा रक्षन्ति स्म परस्परम्।**

अर्थात् शासन यंत्रणा नहीं, शासक नहीं, कोई अपराधी नहीं, शिक्षा करने वाला भी नहीं। सभी लोग धर्म से परस्पर रक्षा करेंगे। भारतीय संस्कृति द्वारा स्वीकार्य इन उच्चतम मापदण्डों को गुरुजी ने अपने समाज दर्शन में स्वीकार किया जिसे निम्नलिखित शीर्षकों द्वारा समझा जा सकता है –

**आदर्श समाज रचना**

आदर्श समाज रचना का सपना अनेक तत्वविदों, समाजशास्त्रियों, मनीषियों ने देखा है। आधुनिक काल में कार्ल मार्क्स ने समतायुक्त, शोषणमुक्त, शासनविहीन समाज का सपना देखा। महात्मा गांधी ने अहिंसा और सत्य पर आधारित सर्वोदय समाज का सपना देखा। डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर ने स्वातंत्र्य, समता, बंधुता और न्याय पर आधारित समाज–रचना का सपना देखा। किन्तु श्रीगुरुजी काल्पनिक आदर्श समाज का ऐसा कोई चित्र नहीं रखते। वे अपने प्राचीनतम इतिहास के आईने में देखकर श्रेष्ठ समाज का चित्र – जो किसी समय वास्तविकता थी, सम्मुख रखते हैं।

वे कहते हैं – "हमारी हिन्दू संस्कृति ने समाज का कौन–सा चित्र रखा है? इस प्रश्न पर विचार करते समय हमारे सम्मुख जो चित्र आता है, उसमें हम देखते हैं कि हमारे यहाँ समाज–जीवन के भाव के अनुसार युग की ओर उस समकालीन संस्कृति की कल्पना रखी गई है – सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग। इनमें से प्रत्येक में समाज की विशेष स्थिति होती है। सतयुग में सब समान थे, सम्पत्ति सबकी थी, जिसमें से आवश्यकतानुसार लेकर सब सुखी जीवन व्यतीत करते थे। धर्म चारों अंगों से समाज में व्याप्त था। अखण्ड मंडलाकार विश्व को एकात्मता का साक्षात्कार करने वाले धर्म के आधार पर प्रत्येक की प्रकृति को जानकर दूसरे के सुख के लिए काम करता है। समाज व्यवस्था प्राचीन संस्कृति पर आधारित है। मनुष्य वह इकाई है, जिसमें समाज का निर्माण होता है, मनुष्य योनि में जन्म के कारण सभी मानव, इस संज्ञा से समान है; लेकिन एक सरीखे नहीं होते। जन्मतः कोई बुद्धिमान होता है, कोई कम बुद्धिमान; कोई गोरा होता है तो कोई काला; कोई ऊँचा होता है तो कोई ठिगना; मानव में गुणों और क्षमताओं की असमानता रहती है। श्रीगुरुजी इस जन्मतः असमानता को विषमता नहीं मानते। वे कहते हैं कि यह एक ही चैतन्य का

विविधतापूर्ण आविष्कार है।"[1] संस्कृति की देन को गुरुजी ने अपने शब्दों में इस प्रकार व्यक्त किया है – "आत्मा का आधार ही वास्तविक आधार है, क्योंकि आत्मा सम है, सबमें एक ही जैसी समान रूप से अभिव्यक्ति है। सबका एक ही चैतन्य है, इस पूर्णता के आधार पर ही प्रेमपूर्ण व्यवहार व्यक्त रूप मानकर विशुद्ध प्रेम यही वह अवस्था है, जिसकी झलक हमें भारतीय संस्कृति में दृष्टिगोचर होती है।"[2]

श्रीगुरुजी संस्कृति से आबद्ध सामाजिक जीवन का एक श्रेष्ठ दार्शनिक आधार यहाँ प्रस्तुत करते हैं।

निसर्गतया जो असमानता उत्पन्न होती है, उसको भेद और विषमता मानना गलत है। इसको और अधिक स्पष्ट करते हुए वृक्ष के दृष्टान्त से वे कहते हैं – "उदाहरणार्थ एक वृक्ष को लीजिए, जिसमें शाखाएं, पत्तियां, फूल और फल सभी कुछ एक–दूसरे से नितान्त भिन्न रहते हैं, किन्तु हम यह जानते हैं कि ये सब दिखाने वाली विविधताएं उस वृक्ष की भांति–भांति की अभिव्यक्तियां हैं। जिस प्रकार व्यक्ति की रुचियां भिन्न–भिन्न होती हुई भी अंत में इसमें ही विलीन होती है वैसे ही भव्य संस्कृति के विटप से अंकुरित परम्पराएं, विविधताएं, विचारधाराएं, अंत में उसी में विलीन हो जाती हैं।"[3]

**संगठित एवं अनुशासनबद्ध समाज**

हमारे समाज ने हम पर अनंत उपकार किए हैं, जिनमें केवल शारीरिक सुख–सुविधा अथवा भौतिक निर्वाह ही नहीं बल्कि कर्तृत्व के हर क्षेत्र में मिलए श्रेष्ठत्व भी सम्मिलित हैं; परन्तु राष्ट्रभावना के निरंतर कमजोर पड़ने से उत्पन्न परस्पर विद्वेष, कलह, ईर्ष्या एवं क्षुद्र स्वार्थ ने हमारे शत्रु–मित्र विवेक को ही नष्ट कर दिया है। सम्पूर्ण राष्ट्र के लिए स्वार्थरहित निष्ठा का अति श्रेष्ठ तथा आग्रही भाव छोड़कर संकीर्ण उद्देश्यों ने हमारे हृदयों में घर कर लिया है। दल, भाषा, प्रदेश, सम्प्रदाय अथवा पंथ के साथ लगाव के बेमेल विरोधी स्वरों ने हमारे राष्ट्रीय जीवन को धक्का पहुँचाया है। ऐसी स्थिति में श्रीगुरुजी समाज की सेवा करने का गौरवपूर्ण मार्ग सामाजिक संगठन और अनुशासन को बताते हैं। वे मानते थे, "राष्ट्र भावना एवं राष्ट्रीय एकता के अभाव का जो मूल रोग है, उसे दूर कर समर्थ, सुसंगठित जाग्रत् एवं आत्मनिर्भर राष्ट्र जीवन का उत्थान करना यही वह मार्ग है। यह किया तो ही हमारा स्वातंत्र्य सुदृढ़ होकर सुरक्षित रहेगा।"[4]

**समरसता**

हमारे राष्ट्र के शत्रु हमारे समाज को छिन्न–विच्छिन्न करने का जो प्रयास भूतकाल से करते आ रहे हैं, वह वर्तमान में भी अव्याहत रूप से जारी है। जाति आधारित आरक्षण, अस्पृश्यता, वंशभेद आदि हमारी एकात्मता पर आक्रमण है। समाज व्यवस्था के बारे में श्रीगुरुजी कहते थे कि हमें उस शुद्ध एकत्व की भावना को पुनरुज्जीवित करना होगा, जिसका प्रादुर्भाव इस अनुभूति के द्वारा होता है कि हम सभी इस महान् पवित्र जन्मभूमि भारतमाता के पुत्र हैं। हमारे समाज–पुरुष की सभी धमनियों में एक बार यह एकता का जीवन–स्रोत प्रवाहित होना आरम्भ हो जाए तो हमारे राष्ट्रजीवन के सभी अंग स्वतः क्रियाशील हो जायेंगे तथा सम्पूर्ण समाज के कल्याण हेतु मिलकर कार्य करने लगेंगे।[5] विश्व हिंदू परिषद् के मंच से "हिन्दवः सोदराः सर्वे" एवं "न हिंदू पतितो भवेत्" को मंत्र देकर श्रीगुरुजी ने हमारी सामाजिक समरसता को नया आयाम दिया।

**समाज की परमेश्वर है**

भारत देश में या राष्ट्र में शासन, सत्ता व रहन–सहन की अनेक पद्धतियां होते हुए भी सबका शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व रहा, क्योंकि हमने मनुष्य के व्यवहार को महत्त्व दिया है। मनुष्य से अपेक्षा की गई कि वह अपने समस्त कर्म विराट् की पूजा के रूप में करे, जनता को ही जनार्दन यानी ईश्वर की अभिव्यक्ति के रूप में देखें। श्रीगुरुजी इसे सुंदर ढंग से समझाते हुए कहते हैं – "समाज को परमेश्वर के रूप में देखने की सर्वोच्च अवधारणा ही हमारे राष्ट्र की आत्मा है और हमारी सोच में अनुस्यूत होकर उसने हमारी सांस्कृतिक धरोहर की अनेक अभिनव अवधारणाओं को जन्म दिया है। यह दृष्टि हमें समाज के प्रत्येक व्यक्ति को दिव्यत्व के एक अंश के रूप में देखने की प्रेरणा देती है। अतः सभी व्यक्ति समान भाव वे पवित एवं हमारी सेवा के पात्र हैं। अतएव उनके बीच किसी भी प्रकार के भेदभाव की बात निंदनीय है। इस प्रकार समाज–सेवा को हमारी संस्कृति में ईश्वर की पूजा का पवित्र रूप दिया गया है।"[6]

वे पुनः कहते हैं – "हमारे चारों ओर सहस्रों मानव प्राणी हैं, जो भूखे और निराश्रित हैं, जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं से भी वंचित हैं और जिनकी कष्ट–कथाएं पाषाणस–हृदयों को भी पिघला देती है। सच तो यह है कि उस परमात्मा ने ही गरीब, निराश्रित एवं पीड़ित का रूप धारण किया है। क्या उसकी स्वयं की कोई इच्छा शेष है? वह तो सम्पूर्ण शक्तियों का, सम्पूर्ण ज्ञान का स्वरूप ही है तथा सबका स्वामी है। फिर वह कौन सी वस्तु है, जिसकी उसे चाह हो सकती है? वह तो हमें अपनी सेवा के लिए अवसर प्रदान करने के लिए ही उन रूपों में आता है।"[7]

श्री रामकृष्ण परमहंस ने उन्हें दरिद्र नारायण की संज्ञा दी है, जिनकी सेवा से हमारा सम्पूर्ण जीवन भेंट–स्वरूप बन जाएगा। उपनिषदों में कहा है[8] –

**ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंचजगत्यां जगत्।**
**तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम्।।**

अर्थात् सम्पूर्ण सृष्टि के कण–कण में ईश्वर का निवास है। अपना सब कुछ उसके भोग के लिए चढ़ा देने के पश्चात् जो बचा रहे, उसी को प्रसाद रूप में ग्रहण करना चाहिए। बाकी तो उसका है, उसके लिए लालच नहीं करना चाहिए।

**सामाजिक विघटन के मूल तत्त्व :**

(अ) जातिवाद
(ब) क्षेत्रवाद
(स) भाषावाद
(द) भ्रष्टाचार
(य) साम्प्रदायिकता

**जातिवाद**

जाति संगठन अपने आप में बुरा नहीं, बल्कि सामाजिक संगठन की एक महान् संस्था है, इसने राष्ट्रीयता के कवच का काम किया है।

श्री गुरुजी ने कहा था[9] –

**"मैं जाति को अपनी प्राचीन संस्कृति के कवच के रूप में देखता हूँ, अपने समय में उसने कर्त्तव्य किया, किंतु आज वह असंगत है।"**

आज आवश्यकता इस बात की है कि हम तथाकथित सेक्यूलर, कम्यूनिस्टों के हल्ला बोल से अप्रभावित रहकर इसे सुसंगत बनाने का प्रयास करें। श्रीगुरुजी ने भी 15 मार्च, 1954 में कहा था – "अपनी दृष्टि में सब अपने समाज के अंग–प्रत्यंग हैं। उनमें कोई छोटा (अस्पृश्य) नहीं है।"[10]

अंधकारपूर्ण काल में अस्पृश्यता की बुराई जातिवाद की विकृति के रूप में पनपी। इस प्रवृत्ति ने समाज एवं राष्ट्र का बहुत नुकसान किया है। इसे तुलसी, कबीर, नानक, दयानंद, टैगोर, ज्योतिबा फुले, गांधीजी आदि के सहयोग से दूर करने का प्रयास किया गया है। आवश्यकता इस बात की है कि जो कुछ भी अस्पृश्यता के अवशेष समाज में रह गए हों, उन्हें प्रयत्नपूर्वक निकाल फेंकना चाहिए।

सुधार के लिए रास्ता बताते हुए श्रीगुरुजी ने कहा था – "अस्पृश्यता को बलपूर्वक दूर करने से काम नहीं चलेगा। इसके लिए धर्मगुरुओं को आगे आना होगा और उन्हें शुद्धीकरण की अत्यंत सरल विधि बताकर कार्य करना होगा।"[11]

भारतवर्ष की सामाजिक व्यवस्था के ऊपर अपने दृष्टिकोण को रखते हुए श्रीगुरुजी उल्लिखित करते हैं – "हम वह शुद्ध एकत्व की भावना पुनरुज्जीवित करें, जिसका प्रादुर्भाव इस अनुभूति के द्वारा होता है कि हम सभी इस महान् पवित्र जन्मभूमि भारतमाता के पुत्र हैं।"[12] हम जानते हैं कि अपनी जाति के प्रति बढ़ती हुई निष्ठा जातिवाद के रूप में हमारे यहाँ प्रस्फुटित हुई। विदेशी दासता के दुष्प्रभाव ने भरतवंशियों को यह कटु अनुभव करा दिया है कि उन्होंने (आंग्ल शासक) एक वर्ग या जाति को एक–दूसरे के विरुद्ध, यथा – ब्राह्मणों को अन्य जातियों के विरोध में, बांटों और राज्य करो के सिद्धांत का प्रतिपादन किया, इस कुटिल नीति का परिणाम यह हुआ कि वर्तमान समय में जनसामान्य ही नहीं, तथाकथित राजनेता एवं शासक वर्ग भी स्वेच्छया इसका शिकार हो गए। जातिगत आधार पर भेदभाव की नीति, आरक्षण का अनुचित उपयोग, वोट बैंक की राजनीति आदि ने भारतीय जनमानस में विकृति उत्पन्न कर जातीय दंगों एवं अन्य विघटनात्मक शक्तियों से परिलक्षित कर, समाज को पतन की ओर उन्मुख कर दिया। श्रीगुरी के अनुसार–इस जातिवाद ने सामाजिक मान्यताओं, यथा–न्याय, उचितता, समता तथा सर्वव्यापी बंधुत्व की भी उपेक्षा की है। यह जातिवाद राष्ट्र निर्माण में ही नहीं, प्रजातंत्रीय व्यवस्था को दृढ़ बनाने, नैतिक उत्थान तथा राष्ट्रीय एकीकरण में सबसे बड़ा घातक तत्त्व है।[13]

**आरक्षण की बैशाखियां**

आरक्षण समाज के वंचित, दबे एवं पिछली पंक्ति के लोगों को विशेष सुविधा देकर आगे लाने की व्यवस्था है। आजादी के समय यह व्यवस्था दस वर्ष के लिए थी, परंतु राजनीतिक दलों के निहित स्वार्थ और वोट बैंक की राजनीति के कारण यह आज तक लागू है। यह व्यवस्था योग्यता पर कड़ा आघात है और समानता के सिद्धांत के विरुद्ध है, जिससे सामाजिक असंतोष उत्पन्न होता है, फलतः सामाजिक समरसता भंग होती है। यह स्थिति राष्ट्रीयता एकात्मता के समक्ष एक चुनौती बनकर खड़ी है।

सन् 1973 में श्रीगुरुजी ने भी इस विषय पर कहा था – "डॉ. अम्बेडकर ने सन् 1950 में गणतंत्र की स्थापना के समय से केवल 10 वर्षों की अवधि के लिए इसे स्वीकार किया था। आज हम सन् 1973 में हैं, फिर भी अवधि बढ़ाने का क्रम जारी है। मैं केवल जाति के आधार पर विशेष सुविधाएं प्रदान करने के विरुद्ध हूँ।"[14]

वस्तुतः वंचित वर्गों का उत्थान करना हम सभी का कर्त्तव्य है, इस हेतु जाति–आधार से ऊपर उठकर वास्तविक वंचितों तक इसका लाभ पहुँचे, ऐसी व्यवस्था हो।

**वनवासी बन्धुओं की उपेक्षा का विरोध**

वनवासी बंधुओं से हमारा कभी द्वेष नहीं रहा। ये समाज–व्यवस्था के अंग रहे हैं। सत्यनारायण कथा (स्कंद पुराण) में 'चारों वर्णों का ऐक्य प्रकट है।' श्रीराम ने निषाद आदि वनवासी बंधुओं को राष्ट्र का अंग समझ कर उन्हें आत्मीयतापूर्वक सहेजकर भारत के सांस्कृतिक अभियान में सहयोगी बनाया था।

श्रीगुरुजी ने भी सन् 1963 में वनवासी आश्रम, जयपुर में कहा था – "वनवासी हिंदू समाज के अभिन्न अंग हैं। पंचायत के पाँच सदस्यों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा एक निषाद होता था। इसमें निषाद (वनवासी) की आवश्यकता पर जोर भी दिया गया है। इन सभी को मिलाकर "पंच परमेश्वर" कहा जाता था अर्थात् समग्र समाज समष्टि के रूप में भगवान का विराट् रूप है।"[15]

**नक्सलवादी उपद्रवों से सामाजिक कटुता एवं क्षोभ**

आंध्र के नक्सलबाड़ी[16] ग्राम में भूमि के बंटवारे सम्बन्धी असंतोष से उत्पन्न हुआ नक्सलवाद भूमि–सुधार विनोबाजी के भूदान आन्दोलन द्वारा शमित कर दिया गया था किन्तु बाद में ऐसी ही आर्थिक समस्याएँ अन्यत्र भी उत्पन्न हुईं। शासकीय पोल–पट्टी खुलने और समस्या टालने की प्रवृत्ति से यह समस्या बढ़ती गई। बाद में कम्यूनिस्टों ने इस मुद्दे को अपने स्वार्थ के लिए राष्ट्रीय समस्या में बदल दिया।

वर्तमान में नक्सलवाद नेपाल से भारत में घुसपैठ करने वाले माओवादियों के सम्पर्क में आकर अत्यन्त क्रूर और भयानक हो गया है। यह कर्नाटक से बस्तर, उड़ीसा, झारखण्ड, छत्तीसगढ़, बिहार, उत्तर प्रदेश से नेपाल तक लम्बे–चौड़े क्षेत्र में 14 राज्यों तक अपने पांव पसार चुका है।[17] हजारों व्यक्ति, करोड़ों की सम्पत्ति और करोड़ों श्रम घंटे इस आंदोलन में नष्ट हो चुके हैं।

इस प्रकार नक्सलवाद समाज में क्षोभ उत्पन्न कर राष्ट्रीय एकात्मता के लिए अनेक रूप में घातक होने से एक बड़ी चुनौती बन गया है।

श्रीगुरुजी ने समाधान बताते हुए कहा था कि– "यदि जनता को अपने कार्यों के प्रति सतर्क और जागरूक किया जाए तो इन सभी ताकतों (जैसे नक्सलवाद) का, जो देश में अराजकता की स्थिति का निर्माण कर रही हैं, ठीक–ठाक मुकाबला किया जा सकता है। मुझे विश्वास है

कि देश एकजुट होकर खड़ा होगा, इस चुनौती का सामना करेगा और सफल होगा।"

**क्षेत्रवाद**

किसी क्षेत्र की भाषा या बोली अथवा आर्थिक भौगोलिक स्थिति को लेकर वहाँ के हितों को सर्वोपरि रखकर, राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा करना क्षेत्रवाद अथवा क्षेत्रीयता है।[18] यह संघीय संरचना की सबसे बड़ी समस्या है। परमपूज्य श्रीगुरुजी का विचार है कि यदि वर्तमान संघीय प्रणाली को जीवित रखना है तो यह अनिवार्य हो जाता है कि इस हेतु सुनिश्चित सिद्धांतों को निर्धारित कर उनका कठोरतापूर्वक पालन किया जाए। अपने देश के अंदर एक ऐसी विकृत मानसिकता निर्मित की गई कि आर्य बाहर से आए एवं द्रविड़ यहाँ के मूल निवासी हैं। जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि दक्षिण के राज्य हमसे विमुख होकर नए राष्ट्र द्रविड़स्थान की माँग करने लगे। अतीत का स्मरण यदि हम करें तो मुस्लिम लीग की माँग ने अखण्ड भारत का वह भूभाग हमसे प्राप्त कर पाकिस्तान का निर्माण कर लिया, जहाँ सप्तसैंधव प्रदेश इस आर्यावर्त को शोभायमान करता था। आज स्वाधीन भारत में आंध्र प्रदेश के अंदर पृथक तेलंगाना राज्य, कनार्टक और तमिलनाडु के मध्य कावेरी नदी जल–विवाद इस प्रकार की क्षेत्रीयता को आयाम दे रहे हैं कि राष्ट्र पुनः विभाजित हो। परिणाम यह हुआ है कि भारत राष्ट्र के अंदर छोटे–छोटे राष्ट्र, यथा – महाराष्ट्र, सौराष्ट्र, दलितस्थान, गोरखालैण्ड, असम गण परिषद् इत्यादि की निर्मिति अखण्ड भारत के निर्माण में बाधक बनेगी।[19]

**भाषावाद**

राष्ट्र जीवन को समृद्ध बनाने की दृष्टि से भाषा का अपना महत्त्वपूर्ण योगदान है। अधुनातन समय में आंग्ल भाषा के भूत ने भारतवासियों को अपने मोहपाश में जकड़ रखा है। सामान्य बोलचाल के रूप में विवाह, जन्मदिवस आदि ऐसे अनेकानेक अवसरों पर निमंत्रण–पत्रों को आंग्ल भाषा में छपवाकर यहाँ का सामान्य–जन अपने को बड़ा गौरवान्वित अनुभव करता है। किन्तु श्रीगुरुजी का विचार था कि अनार्य भाषा का दैनिक जीवन में उतना ही उपयोग हो, जितना कि वह आवश्यक प्रतीत होती है। प्रादेशिक भाषाओं में अथवा मातृभाषा हिंदी का प्रयोग नियमितता के साथ होना चाहिए। यद्यपि इस कार्य में अनेक कठिनाइयां प्रस्तुत हो सकती हैं, किंतु स्वभाषा के आग्रह पर ही हम स्वदेशी एवं स्वराष्ट्र के भाव को जाग्रत् कर समूचे राष्ट्र को ऐक्य–सूत्र में आबद्ध कर सकेंगे।[20]

दूसरी ओर श्रीगुरुजी भाषायी आधार पर लोगों को बांटने के पक्ष में नहीं थे। उन्होंने राष्ट्रहित और राष्ट्रीय एकता को सर्वप्रथम प्राथमिकता दी है।[21] उनका सिद्धांत था कि राष्ट्र को प्रथम प्राथमिकता और अन्य सब की उसके बाद की दूसरी प्राथमिकता है और वह भी उसके लिए जो राष्ट्र हित में है।[22]

राज्य पुनर्गठन आयोग के प्रतिवेदन के प्रकाशन के उपरान्त गुरुजी ने एक लेख लिखा जिसका शीर्षक था – "एकात्मक राज्य की आवश्यकता है।"[23] उनका विचार था कि क्योंकि हम एक राष्ट्र हैं एक एकात्मक राज्य जिसका एक विधान मण्डल हो, एक ही कार्यपालिका हो जो सारे राष्ट्र को एकता और अखण्डता के लिए हितकर होगी और भाषायी राज्य जिनका आधार होगा। अलग–अलग विधानमण्डल और हर राज्य की अलग–अलग कार्यपालिका वह राष्ट्रीय एकता के हित में नहीं होगी।[24]

**भ्रष्टाचार**

सामाजिक विघटन की शक्तियों की जड़ में व्याप्त भ्रष्टाचार सार्वजनिक जीवन में एक व्याधि के रूप में समूचे समाज में दृष्टिगोचर होता है। परम पूज्य श्रीगुरुजी का कहना था कि जब व्यक्ति लोकजीवन में इस प्रकार का आचरण प्रारम्भ कर दे कि जिसके द्वारा वह अपने निजी स्वार्थ अथवा लाभ के लिए अपने पद अथवा सत्ता का दुरुपयोग करे, तो वह भ्रष्टाचार के उच्चतम शिखर पर है। भ्रष्टाचार का जन्म ही समझौतापरस्त मानसिकता के कारण होता है।[25] उनके अनुसार भ्रष्टाचार की इस व्यापकता के कारण व्यक्ति की संवेदनशीलता कुंद हो गई, चरित्र का अधःपतन, अस्तित्व का संकट और समाज जीवन को छिन्न–भिन्न करने का सुनियोजित प्रयत्न, यह इस विषय को इंगित करता है कि व्यक्ति के अंदर एक ऐसे असुर ने जन्म ले लिया है कि वह उसे एवं उसके समाज तथा राष्ट्र को खोखला बना देगा, जिसके कारण भविष्य की पीढ़ी इस प्रकार के दानव से ग्रस्त हो अपने को संकटापन्न स्थिति में देखेगी।[26]

**साम्प्रदायिकता**

भारतीय संविधान के अनुसार भारत एक पंथनिरपेक्ष राष्ट्र है।[27] विभिन्न मतों–पंथों के अनुयायी यहाँ दीर्घकाल से निवास करते चले आ रहे हैं। यहाँ का राष्ट्रीय जीवन अति पुरातन है। भारतीय एकात्म प्रवाह से परिपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति कराने वाला मानव समूह 'हिंदू' यहाँ अनंतकाल से विख्यात है। श्रीगुरुजी के विचारानुसार, यहाँ का राष्ट्रीय जीवन 'हिंदू राष्ट्रीय जीवन' नाम से सुशोभित है। इस राष्ट्रीय प्रवृत्ति को पुष्ट एवं सहयोग देने वाले समस्त कृत्य राष्ट्रीय हैं, परंतु इसके विपरीत स्वयं को इस राष्ट्रीय प्रकृति एवं प्रवृत्ति से भिन्न मानकर राष्ट्रीय हितों के विपरीत आशाएं, आकांक्षाएं संजोने वाले और अपने लिए पृथक् न्याय एवं विशेषाधिकारों की माँग करने वाले समस्त समूह 'साम्प्रदायिक' कहलाते हैं। पंथ–परिवर्तन, पूजा–स्थलों का विध्वंस अथवा उनके पावित्र्य भंग, महान् पुरुषों अथवा उनके स्मृति–चिह्नों का अपमान अथवा किसी भी प्रकार का अनाचार, अत्याचार से युक्त आचरण इत्यादि राष्ट्र–विरोधी मानसिकता के परिचायक हैं, इसका मूल उद्देश्य समाज एवं राष्ट्र विघटन की स्थिति को उत्पन्न करना है।[28]

**सेक्यूलरवाद के प्रलाप एवं पाखण्ड की चुनौती**

तथाकथित सेक्यूलरवादी अपनी धर्मनिरपेक्षता का आलाप–प्रलाप इतने पाखण्डपूर्वक जोर–शोर कर रहे हैं कि असली धर्मनिरपेक्ष एवं सर्वधर्म समभाववाला हिन्दू समाज अपराध–बोध से ग्रस्त हो गया है। अपने धर्मदर्शन एवं परम्पराओं का सम्यक् ज्ञान तथा आत्मबल की कमी के कारण भारत को राष्ट्रीय समाज का आम आदमी आज स्वयं को 'साम्प्रदायिक' कहलाने से बचना चाहता है।

श्रीगुरुजी ने भी 2 जनवरी, 1950 को उत्तर प्रदेश में कहा था – "क्या आज भारत में लोग यह कह

सकते हैं कि हम हिन्दू हैं? ऐसा कहने में क्या वे गौरव अनुभव करते हैं? गौरव के साथ हिन्दू कह सकने की स्थिति अभी नहीं आई है।..... अब हमें 'साम्प्रदायिक' नाम प्राप्त हो गया है। आज भी हिन्दू कहने में डर लगता है।"[29]

**शिक्षा के भगवाकरण का हौवा और भारतीय के स्वाभिमान, इतिहासएवं चित्ति पर चोट – एक बड़ी चुनौती**

पहले अंग्रेजी शासन के द्वारा और बाद में नेहरू प्रेरित बुद्धिजीवी, लेनिन एवं मार्क्स के भक्त, भारतीय कम्युनिस्ट और छद्म सेक्यूलरवादियों के द्वारा रचित विकृत इतिहास पढ़ाकर हमें हमारे प्राचीन गौरव, प्राचीन ज्ञान, प्राचीन परम्पराओं और सनातन संस्कृति से काटकर दिशाशून्य, दिग्भ्रमित करने का प्रयास किया जा रहा है। हमें पढ़ाया गया कि हम मध्य एशिया से आकर भारत में बस गए। यहाँ के मूल निवासियों को जंगल व दक्षिण में भगा दिया। ऐसा इसलिए लिखा गया, ताकि जंगल और शहरवासी लड़ते रहें और उत्तर–दक्षिण के बीच भी द्वेष–दुर्भावना फैले। यह सारे समाज को लड़ाने–तोड़ने, प्राचीन गौरव इतिहास को भुलाने, राष्ट्रीयता के भाव छिन्न–भिन्न करने तथा राष्ट्र की चेतना "चित्त" को तोड़ने का कुप्रयास था, जो अभी भी जारी है।

श्रीगुरुजी ने इस संदर्भ में सन् 1957 में त्रिवेंद्रम के अपने भाषण में कहा था – "हमें जो इतिहास पढ़ाया गया, उसमें कहीं भी यह नहीं बताया गया कि हिन्दू इस देश में भी गौरवपूर्ण और सम्मानपूर्वक जीवनयापन करता था। इतिहास का कुछ इस प्रकार विभाजन था जैसे अंधकारपूर्ण युग, उसके बाद मुगलकाल और फिर ब्रिटिशकाल – हमें ऐसा कुछ भी नहीं पढ़ाया गया, जो हिन्दू गौरवकाल का स्मरण कराए।"[30]

पाखण्डपूर्ण इस दुश्चक्र को जानकर हम अपनी प्राचीन संस्कृति से जुड़ने का प्रयास करने लगे तो हौवा खड़ा किया गया कि साम्प्रदायिक लोगों द्वारा "भगवाकरण" किया जा रहा है। ज्योतिष, वैदिक गणित, योग, आयुर्वेद, गीता, गौरक्षा आदि का पाठ्यक्रम में शामिल करना तथा राष्ट्रवादी इतिहास लेखन करना कोई भगवाकरण नहीं है। भगवाकरण के महान अर्थ को इन चालाक राष्ट्रद्रोहियों ने गाली के रूप में उपयोग कर राष्ट्रवादियों का मनोबल डिगाने एवं सत्पथ से विचलित करने का प्रयास किया है।

**मदरसों में दी जा रही राष्ट्र–विरोधी शिक्षा – चुनौतियों की जननी**

भारत में अनेक मदरसों को केन्द्र बनाकर मुस्लिम बालकों एवं युवाओं के दिलो–दिमाग में हिंसा व पृथकतावादी विचार ठूस–ठूसकर भरे जा रहे हैं। जैसे दारूल–ए–हरब को दारूल–ए–इस्लाम में बदलने की भावना, काफिरों के विरुद्ध जेहाद छेड़ना पुण्य है। बुतपरस्ती कुफ्र (पाप) है, इसे मिटा दो। माल–ए–गनीमत की लूट एवं काफिरों के युद्ध में मारे जाने अथवा कैद हो जाने पर उसकी स्त्री का अपहरण करना हलाल है। हम पहले मुसलमान फिर और कुछ हैं। मजबह राष्ट्र से ऊपर है। "कुरान" ही मोक्ष का एकमात्र मार्ग है, बाकी सब धर्ममत दोजख (नरक) में ले जाते हैं, एक अल्लाह ही प्रणाम करने लायक है और कोई नहीं। भारतमाता की प्रार्थना बुतपरस्ती है। देव–मूर्तियां और मंदिर कुफ्र है, जो दोजख की आग में जलेंगे, बुतपरस्ती मिटाना मुसलमानों का धर्म है। काफिरों को सताना मुसलमानों के लिए हलाल (पवित्र कर्म) है, आदि–आदि।[31]

ऐसी अनेक शिक्षाएं धर्म के नाम पर मदरसों में दी जा रही हैं। इन्हीं का परिणाम मुसलमानों के स्वभाव और व्यवहारों में विस्तारवादी नीति, हठधर्मिता, हत्या, हिंसा, बलात्कार, लूट, आतंकवाद, राष्ट्रीय एकात्मता को खण्डित करना आदि के रूपों में प्रकट हो रहा है। ऐसे प्रशिक्षित व्यक्ति आगे चलकर आतंकवादी संगठन के संचालक अथवा उनके समर्थक नेता बनकर राष्ट्रीय एकात्मता के साथ खिलवाड़ करने लगते हैं।[32]

इसी संदर्भ में श्रीगुरुजी ने कहा था – "वास्तव में सम्पूर्ण देश में जहाँ भी एक मस्जिद, मदरसा या मुसलमान बस्ती है, मुसलमान समझते हैं कि वह उनका अपना स्वतंत्र प्रदेश है।"[33]

**शिक्षा, संस्कार की दुरवस्था और मिशनरी स्कूलों की दूषित भाव–भूमिकाएं**

शिक्षा एवं संस्कार एक राष्ट्र को बांधे रखने का कार्य करते हैं। प्राचीन गुरुकुल शिक्षा प्रणाली ने राष्ट्र को सुदृढ़ करने का कार्य किया था, परन्तु हजार वर्षों की गुलामी ने इस व्यवस्था को छिन्न–भिन्न कर दिया। अंग्रेजों के आने के बाद तो शिक्षा का स्वरूप ही बदल गया। मैकाले की गुलामीपरक शिक्षा ने नैतिक मूल्यों का पतन कर दिया।[34]

श्रीगुरुजी ने इस मुद्दे पर विचार दिये थे – "हमारी प्रचलित शिक्षा–प्रणाली में धर्म, नीति, राष्ट्रभक्ति, मातृभूमि के प्रति अनन्य श्रद्धा आदि के संस्कार देने की कोई प्रभाव प्रणाली नहीं है।" "यहाँ (भारत) केवल नौकरी की प्रवृत्ति उत्पन्न करने वाली विद्या पल रही है। ऐसी शिक्षा तो आदमी और सारे देश को तोड़ने एवं डुबोने वाली है।"[35]

इतना ही नहीं, वर्तमान में मिशनरी स्कूल शिक्षा के साथ ही भारतीय संस्कारों से वंचित करने और धर्मांतरण के प्रारम्भिक पाठ पढ़ाने के दूषित केन्द्र भी बनते जा रहे हैं। उत्तर प्रदेश की मिशनरी स्कूल की घटना, मेरठ काण्ड आदि इस बात के ज्वलंत उदाहरण हैं। ये स्कूल भी हमारी सभ्यता, संस्कृति एवं राष्ट्रीय एकात्मता के समक्ष चुनौती बनकर खड़े हो गए हैं।[36]

**वंदेमातरम् के विरोध की चुनौती**

कुछ दिनों पूर्व हमारे राष्ट्रगीत "वंदेमातरम्" की रचना के 150 वर्ष पूर्ण हुए। इस उपलक्ष्य में पूरे भारत की शालाओं, कार्यालयों, संस्थानों में इसके गायन की बात उठी, तो मुसलमानों द्वारा इसका विरोध किया गया, बताया गया – "यह उनके धर्म के विरुद्ध है।" इसका यह कथन तर्कपूर्ण, तथ्यपूर्ण नहीं बल्कि पृथकतावादी "लीगी मनोवृत्ति" का परिचायक है। इस प्रकार की राष्ट्र–विरोधी भावना राष्ट्रीय एकात्मकता के समक्ष गम्भीर चुनौती है।[37]

स्वतंत्रता के पूर्व भी मुस्लिमों के द्वारा वंदेमातरम् गीत न गाने का उल्लेख मिलता है। संविधान के निर्माण के समय भी आपत्ति खड़ी की गई थी। मुस्लिम समाज की बुत–पूजा विरोधी भावनाओं को ध्यान में रखकर इस पवित्र गीत के तीन पद्यों में से केवल एक पद्य ही "राष्ट्रगीत" के रूप में सर्वानुमति से स्वीकार किया गया

था। तब तो इस गीत को गाने में किसी को क्या आपत्ति होनी चाहिए थी, परन्तु बात यहीं खत्म नहीं हुई।[38] 1960 के दशक में पुनः यह मुद्दा उठा। तब गुरुजी ने प्रतिक्रिया व्यक्त की थी – "वंदेमातरम् गीत को हम बड़ी श्रद्धा से दोहराते हैं। यह वह गीत है, जिसने अपने सभी नेताओं को मातृभूमि की सेवा और उसकी स्वतंत्रता के लिए सर्वस्व त्याग की प्रेरणा दी।" "अपने देश में कुछ ऐसे भी लोग हैं जिन्हें वंदेमातरम् पर आपत्ति है। हाल ही में कुछ मुस्लिम सज्जनों ने मुम्बई महानगरपालिका की शालाओं में वंदेमातरम् के इस आंशिक गायन पर भी आपत्ति की। यह मनोवृत्ति राष्ट्रीय एकात्मता के विरुद्ध और त्याज्य है।"[39]

**धर्मांतरण से राष्ट्रांतरण तक की दुःख यात्रा – एक बड़ी चुनौती**

पाकिस्तान बनने के बाद जिन्ना ने बड़े गर्व से कहा था – "पाकिस्तान की नींव तो उसी दिन पड़ गई थी जब भारत का पहला हिन्दू, मुसलमान बना था।"[40] इस गर्वोक्ति में बड़े निहितार्थ छिपे हुए हैं, जैसे – धर्मांतरण ही राष्ट्रांतरण है। धर्म बदलना केवल उपासना पद्धति बदलने तक सीमित नहीं रहता। धर्म बदलते ही समाज, रिश्तेदारी, परम्परा, रीति–रिवाज, त्यौहार, पर्व, उत्सव, दृष्टिकोण आदि सभी बदल जाते हैं। अपनी मातृभूमि के प्रति मातृभाव, पूर्वजों के प्रति श्रद्धाभाव का स्थान दुर्भाव ले लेता है। प्रेम का स्थान घृणा, सहकार का स्थान तिरस्कार या प्रतिस्पर्धा ले लेती है, ये सब होते–होते अंततः राष्ट्र भी बदल जाता है। इस प्रकार यह धर्मांतरण राष्ट्रीय एकात्मकता के समक्ष बड़ी चुनौती है।[41]

सन् 2001 की जनगणना के अनुसार 1991 की तुलना में हिन्दुओं की जनसंख्या तुलनात्मक दृष्टि से 5 प्रतिशत घट गई है। इस गिरावट का एक कारण हिन्दुओं का दूसरे धर्मों में धर्मांतरित हो जाना है, जिसे संविधान की धारा 25(ए) प्रश्रय देती है।[42]

भारत में धर्मांरण की दो प्रमुख धाराएं हैं – ईसाईकरण और इस्लामीकरण।

**ईसाईकरण**

ईसाई मिशनरी प्रकट में शिक्षा, चिकित्सा–सेवा का ढोंग रचकर हिन्दुओं को लोभ–लालच देते हैं। फिर धोखे, चालाकी, भय, डर, मिथ्या भ्रमजाल फैलाकर भोले–भाले वनवासियों, हरिजनों आदि का धर्मांतरण करते हैं।[43] श्रीगुरुजी ने कहा था – "ईसाई धर्म–प्रचारक दवाई देने में निःस्वार्थ भाव से काम नहीं करते। इसी आशा से काम करते हैं कि लोग ईसाई बनकर हिन्दुस्तान की भूमि और परम्परा से बेईमान होकर (गद्दारी कर) उसके साथी बनें।"[44]

**इस्लामीकरण**

इस्लाम के भारत आगमन से ही धर्मांतरण की प्रक्रिया शुरू हुई जो आज तक जारी है। मुसलमान जब आए थे तब कुछ हजार की संख्या में थे, आज इनकी जनसंख्या लगभग 15–16 करोड़ हो गई है।[45] स्पष्ट है कि केवल जनांकिकी कारणों से इतनी संख्या नहीं बढ़ सकती। तलवार की नोक पर धर्मांतरण ही इसका मुख्य कारण है।[46] गुरुजी ने सन् 1956 में शस्त्रपूजन कार्यक्रम में कहा था – "आरम्भ में यहाँ केवल एक हजार मुसलमान बाहर से आए थे। अब वे कोटिकाधिक हो गए हैं।" "उनका पंथ स्वीकार करने वाले हमारे ही बंधु अब अपने समाज से कटकर रहना चाहते हैं। उनका यह अलगाव, आज अपनी मातृभूमि का प्रेम, एक धर्म, एक जीवन आदर्श, एक तत्त्व ज्ञान, एक संस्कृति की परम्परा को भूलकर पृथकता और नए–नए राष्ट्रों के निर्माण तक जा पहुँचा है।"[47]

**निष्कर्ष**

इस प्रकार ईसाईकरण और इस्लामीकरण के दोनों रूप हेय व त्याज्य है। इनके चलते राष्ट्रीयता सुरक्षित नहीं है। धर्म, संस्कृति और राष्ट्रीय एकात्मा के लिए इस प्रक्रिया को तुरंत प्रभाव से बन्द कर देना जरूरी है। 25 अक्टूबर, 1955 को श्रीगुरुजी ने नागपुर में कहा था – "यदि धर्मांतरण की समस्या का समाधान करना है तो हिन्दू वंशज सभी मुसलमान व ईसाइयों को चाहिए कि वे फिर से अपने पूर्वजों के स्वधर्म में लौट आएं।"[48]

**सन्दर्भ ग्रंथ सूची**

1. *श्रीगुरुजी निष्काम कर्मयोगी (श्री गुरुजी पर केन्द्रित निबंधों का संग्रह), पृ. 98–99*
2. *वही*
3. *वही, पृ. 99*
4. *वही, पृ. 196*
5. *एम.राम जोयिस, श्रीगुरुजी और सामाजिक समरसता, पृ. 62–63*
6. *श्रीगुरुजी निष्काम कर्मयोगी (श्रीगुरुजी पर केन्द्रित निबंधों का संग्रह), पृ. 116*
7. *वही*
8. *वही*
9. *श्री गुरुजी समग्र, 5/15/*
10. *श्री गुरुजी समग्र, 2/18/*
11. *श्री गुरुजी समग्र, 2/332, 3/169*
12. *श्रीगुरुजी निष्काम कर्मयोगी (श्रीगुरुजी पर केन्द्रित निबंधों का संग्रह), पृ. 215*
13. *वही*
14. *श्री गुरुजी समग्र, 9/93*
15. *श्री गुरुजी समग्र, 5/34*
16. *विवेक सक्सेना/सुशील राजेश, नक्सली आतंकवादी, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ. 134–135*
17. *वही, पृ. 18*
18. *डॉ. आर.एन. त्रिवेदी/डॉ. एम.पी. रॉय, भारतीय सरकार एवं राजनीति, पृ. 266*
19. *श्री गुरुजी निष्काम कर्मयोगी (श्री गुरुजी पर केन्द्रित निबंधों का संग्रह), पृ. 215–216*
20. *वही*
21. *एम.राम जोयिस, श्री गुरुजी और सामाजिक समरसता, पृ. 74*
22. *वही*
23. *वही*
24. *वही*
25. *श्री गुरुजी निष्काम कर्मयोगी (श्री गुरुजी पर केन्द्रित निबंधों का संग्रह), पृ. 216*
26. *वही*

27. डॉ. आर.एन. त्रिवेदी/डॉ. एम.पी. रॉय, भारतीय सरकार एवं राजनीति, पृ. 370
28. श्री गुरुजी निष्काम कर्मयोगी (श्री गुरुजी पर केन्द्रित निबंधों का संग्रह), पृ. 217
29. श्री गुरुजी समग्र, 2/65
30. श्री गुरुजी समग्र, 3/222
31. श्री गुरुजी निष्काम कर्मयोगी (श्री गुरुजी पर केन्द्रित निबंधों का संग्रह), पृ. 19
32. वही, पृ. 20
33. श्री गुरुजी समग्र, 11/195
34. श्री गुरुजी निष्काम कर्मयोगी (श्री गुरुजी पर केन्द्रित निबंधों का संग्रह), पृ. 23
35. श्री गुरुजी समग्र, 5/140
36. श्री गुरुजी निष्काम कर्मयोगी (श्री गुरुजी पर केन्द्रित निबंधों का संग्रह), पृ. 23
37. वही, पृ. 16
38. वही
39. श्री गुरुजी समग्र, 11/254
40. श्री गुरुजी निष्काम कर्मयोगी (श्री गुरुजी पर केन्द्रित निबंधों का संग्रह), पृ. 28
41. वही
42. वही
43. वही, पृ. 29
44. श्री गुरुजी समग्र, 2/15
45. श्री गुरुजी निष्काम कर्मयोगी (श्री गुरुजी पर केन्द्रित निबंधों का संग्रह), पृ. 29
46. वही
47. श्री गुरुजी समग्र, 5/190
48. श्री गुरुजी समग्र, 6/85